इस घर को आग लग गई घर के चिराग से

अब यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुका है कि भारत देश के रूप में निरंतर आगे बढ़ रहा है और समाज के रूप में पीछे जा रहा है। भौतिक उन्नति तीव्र गति से आगे छलांग लगा रही है किन्तु पांच प्रकार की समस्याऍं निरंतर बढ़ रही है (1) भ्रष्टाचार, चरित्र पतन, (2) अधिकारों की असमानता,(3) अपराध हिंसा और आतंकवाद (4) साम्प्रदायिकता और जातीय कटुता, (5) आर्थिक असमानता और श्रम शोषण। स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही भारत मं ये सभी समस्याऍं बढ़नी शुरू हुई और आज तक इनकी वृद्धि की रफ्तार कभी कम नहीं हुई। भविष्य में भी किसी एक भी समस्या की वृद्धि रूकने के लक्षण नहीं दिखते। इन पांच प्रकार की समस्याओं की वृद्धि की कीमत पर भौतिक विकास को सफलता का मापदण्ड नहीं माना जा सकता। आत्म मंथन की आवश्यकता है कि ऐसा क्यों हुआ, और इसका समाधान क्या है?

समाज में भ्रष्टाचार और चरित्र पतन बहुत गंभीर समस्या मानी जाती है, चाहे स्थानीय स्तर पर हों या राष्ट्रीय स्तर पर। भ्रष्टाचार के रहते आपकी कोई भी योजना कभी सफल नहीं हो सकती। आज भारत में भ्रष्टाचार पूरे आसमान पर है। दुनिया के देशों से तुलना में भी भारत दुनियां में सर्वाधिक भ्रष्ट देशों की सूची में शामिल माना जाता है। भ्रष्टाचार और चरित्र पतन एक दूसरे के पूरक हैं। जिस गति से भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, उसी गति से चरित्र में भी गिरावट आ रही है। अब तो भ्रष्टाचार और चरित्र पतन शासकीय क्षेत्रों से निकलकर सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में भी लगातार पांव फैला रहा है। सम्पूर्ण समाज इन दोंनों समस्याओं से पूरी तरह ग्रस्त भी है और त्रस्त भी।

इन दोनों समस्याओं के यद्यपि कई कारण है किन्तु सबसे प्रमुख कारण है समाजवाद की गलत अवधारणा। दुनिया के अनेक देशों की समाजवाद की अधूरी परिभाषा को भारत में ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया। पश्चिम के देश समाजवाद की परिभाषा मानते ह ''समाज में आर्थिक विषमता का कम होना''। प्रचीन भारत ''सामाजिक मामलों में निर्णय के अधिकतम अधिकार समाज के पास'' को समाज मानता रहा। स्वतंत्रता के बाद भारत ने समाजवाद की पश्चिम की परिभाषा की नकल की जिसमें पण्डित नेहरू, राम मनोहर लोहिया तथा जयप्रकाश जो तक शामिल हो गये। समाजवाद की इस परिभाषा ने भारत में लोकतंत्र की आदर्श परिभाषा ''लोक नियंत्रित तंत्र'' को लोक नियुक्त तंत्र में बदल दिया क्योंकि समाज के आर्थिक विकास का सारा दायित्व समाज से हटाकर शासन को सौंप दिया गया था। इन तथाकथित समाजवादियों न शासन और राष्ट्र का भी फर्क हटा दिया। सारे देश में सरकारीकरण को राष्ट्रीयकरण नाम से पुकारा जाने लगा। शासन राष्ट्र का भी प्रतिनिधित्व करने लगा और समाज का भी। परिणाम स्वरूप शासन लगातार अपने अधिकार और हस्तक्षेप में वृद्धि करता गया और उसी गति से समाज के अधिकार, दायित्व और हस्तक्षेप में कमो आती गई। शासन का समाज में जितना हस्तक्षेप बढ़ा उतना ही समाज कमजोर हुआ। समाजवाद की यह अनुपयुक्त परिभाषा आज भी भारत में उतने ही सम्मान से स्वीकार की जाती है जैसी स्वतंत्रता के समय थी। आज भी भारत में कोई यह मानने को तैयार नहीं होगा कि भ्रष्टाचार और चरित्र पतन का मुख्य कारण समाज की परिभाषा को अधिकारों की समानता से हटाकर आर्थिक समानता के साथ जोड़ना हो सकता है।

इस संबंध में एक भूल और हुई कि हमने न्याय और सुरक्षा के स्थान पर कल्याणकारी राज्य की घोषणा कर दी। भारतीय संविधान में नीति निर्देशक सिद्धान्त नाम से कुछ धाराएँ जोड़कर शासन को समाज के हर सामाजिक मामलें में कानून बनाने और हस्तक्षेप करने की खुली छुट ही तो नीति निर्देशक सिद्धान्त है। नीति निर्देशक सिद्धान्तों में एक दो कामों को छोड़कर बाकी सभी ऐसे प्रावधान ही शामिल हैं जो स्थानीय प्रशासन को कमजोर और केन्द्रीय प्रशासन को मजबूत करते हैं। इन सिद्धांन्तों की आड़ में शासन और प्रशासन को खुली छूट दी गई कि वे जनकल्याण के नाम पर जिस सीमा तक चाहें समाज को गुलाम बनाने की व्यवस्था कर सकते हैं। मैंने बहुत लम्बे समय तक भ्रष्टाचार और चरित्र पतन के कारणों पर विचार किया तो पाया कि शासन का समाज में बढ़ता हस्तक्षेप भ्रष्टाचार और चरित्र पतन का सबसे अधिक प्रभावशाली कारण है और शासन के समाज में अधिकाधिक हस्तक्षेप का मुख्य आधार है समाजवाद, जनकल्याणकारो राज्य और नीति निर्देशक सिद्धान्तों का संविधान में समावेश। मुझे तो आश्चर्य होता है कि आज भी भ्रष्टाचार और चरित्र पतन के प्रमुख कारणों में न तो सत्ता के केन्द्रीयकरण को माना जा रहा है न ही समाजवाद, जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा और नीति निर्देशक सिद्धांन्तों को। कांग्रेस पार्टी और विशेषकर जवाहर लाल नेहरू की समाजवादी के नाम पर सामंतवादी लोकतंत्र की सोच भ्रष्टाचार और चरित्र पतन के लिये सर्वाधिक दोषी है।

भारत में तीसरी प्रमुख समस्या है अपराध, हिंसा और आंतक। गांधी जी ने स्वतंत्र भारत में प्रत्येक नागरिक के भयमुक्त होने की गारंटी की बात कही थी। हुआ उसके ठीक विपरीत। सभी अपराधी तथा हिंसक आतंकवादी तो भयमुक्त होते चले गये और सभी सामान्य नागरिक अपराधियों से भी डर रहे है और पुलिस से भी। आतंकवाद सम्पूर्ण भारत में पैर पसार रहा है। आम नागरिकां का न्याय और कानून से विश्वास उठता जा रहा है। सम्पर्ण समाज में न्याय प्राप्ति के लिये सामाजिक हिंसा पर अधिक विश्वास बढ़ता जा रहा है।

एक सीधा सिद्धान्त है कि प्रशासनिक बल प्रयोग यदि आवश्यकता से कम होता है तो समाज में उसकी उसी तरह प्रतिक्रिया होती है जिस तरह कीटाणुओं पर कम दवा का विपरीत प्रभाव होता है। यदि समाज में हिंसा अपराध और आंतकवाद बढ़ा है तो इसका सिर्फ एक ही कारण है कि शासन ने इन्हें रोकने के मामलें में आवश्यकता से कम बल का प्रयोग किया। बल प्रयोग के मामले में शासन को कमजोर करने का सबसे बड़ा कारण गांधीवादियों की अस्पष्ट सोच रही है। मैं आज तक नहीं समझ सका कि जहॉ शासन का बल प्रयोग करना चाहिये वहाँ भी गाँधीवादी बल प्रयाग के विरूद्ध सलाह दिया करते है। शराब जुआ, वैश्यावृत्ति और छूआछूत के विरूद्ध कानून बनाने की सिफारिश कर करके तो इन लोगों ने प्रशासन को ओवर लोडेड कर दिया दूसरी ओर डकैती और हिंसा के विरूद्ध हृदय परिवर्तन की रट लगा लगाकर प्रशासन को उचित बल प्रयोग से रोकने का भी प्रयास किया। अपराध नियंत्रण में शासन की कमजोर भूमिका का प्रमुख कारण गांधीवादियों का न्यूनतम बल प्रयोग का सिद्धान्त रहा है जिसके परिणाम स्वरूप समाज में हिंसा का प्रभाव बढ़ा या हिंसा की आवश्यकता समाज में महसूस की गई। यदि शासकीय हिंसा और सामाजिक हिंसा में अंतर करके अहिंसा की भावना का प्रचार प्रसार समाज तक सीमित होता तो न शासन इतना कमजोर होता न अपराधी इतने मजबूत।

भारत में चौथी प्रमुख समस्या है साम्प्रदायिकता और जातीय कटुता। भारत में जातीय कटुता वृद्धि तो भारतीय संविधान की देन है किन्तु भारत में साम्प्रदायिकता का विस्तार इस्लामिक तुष्टीकरण से जुड़ा रहा है और इस्लामिक तुष्टीकरण का सारा दोष संघ परिवार का है संघ ने इस्लाम विरोध को अपनी राजनैतिक क्षुधा पूर्ति का ऐसा आधार बनाया कि इस्लाम से समझौता अन्य दलों की राजनैतिक मजबूरी हो गई। इन्ह इस्लाम के वास्तविक चरित्र को कभी ठीक से समझने का अवसर ही नहीं हो पाया। जो काम विचारों से संभव था उसे भावनात्कम स्वरूप से निपटाने के प्रयत्नों ने इस्लाम को सुरक्षित किया। इस्लाम की साम्प्रदायिक सोंच होते हुए भी इस्लाम समाज से उतना अलग थलग नहीं हो पाया जितना होना चाहिये था और उसका एकमात्र कारण है संघ की राजनैतिक भूख।

भारत की पांचवी प्रमुख समस्या है आर्थिक असमानता और श्रम शोषण। ये दोनों ही समस्याएँ भारत में लगातार बढ़ती जा रही हैं गरीब भी लगातार उपेक्षित है और श्रमजीवी भी। न तो निकट भविष्य मं आर्थिक असमानता के घटने के कोई आसार दिख रहे हैं न ही श्रम शोषण कम होने के। इन दोनों ही समस्याओं में बेतहाशा वृद्धि का एकमात्र कारण है भारत के साम्यवादी वामपंथी। आर्थिक असमानता और श्रम शोषण पर ही इनका सारा भविष्य निर्भर करता है। इन्होंने लगातार प्रयत्न किया कि डीजल, पेट्रोल बिजली आदि की मूल्य वृद्धि न हो। यहाँ तक कि अभी एक माह पूर्व ही वामपंथियों ने एक प्रस्ताव पारित करके कहा है कि कृत्रिम उर्जा के मूल्य तो कम किये जावें किन्तु अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का टैक्स कम न किया जावें। आश्चर्य होता है कि ये लोग श्रम शोषक कृत्रिम उर्जा से तो इतना अधिक प्रेम करते हैं कि एक पैसा भी पेट्रोल या बिजली का दाम बढ़े तो इनकी नजर में गरीब और श्रमिक तबाह हो जाता है किन्तु कृषि उपज और साइकिल पर टैक्स वृद्धि में इन्हें कोई दिक्कत नहीं दिखाई देती। गरीबी रेखा को तत्काल समाप्त करने की कोई कारगर योजना ये कभी नहीं सोचते किन्तु शिक्षा बजट बढ़ाने की बहुत चिन्ता करते रहते हैं। जबकि यह पूरी तरह प्रमाणित है कि शिक्षा रोजगार का सृजन नहीं करती भले ही वह रोजगार में छीना झपटी जितनी भी कर ले। रोजगार का सृजन तो श्रम ही कर सकता ह। श्रम को रोजगार और श्रम मूल्य वृद्धि ही गरीबी भी दूर कर सकती है और आर्थिक असमानता भी। लेकिन वामपंथियों ने श्रम के स्थान पर कृत्रिम उर्जा और शिक्षा को अधिक महत्व देकर पूरी तरह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी चौपट करा दिया और ग्रामीण समाज व्यवस्था को भी।

भारत में जो भी समस्याएँ बढ़ी हैं उनमें न तो समाज कोई कारण है न सामाजिक समस्याओं का कोई योगदान है। सिर्फ राजनेताओं की राजनैतिक महत्वकांक्षा ने ही समस्याओं को बढ़ाने का काम किया है। सर्वोदय, संघ और समाजवादियों ने जो भी भूल की है वह उनको नासमझी के कारण है। ये लोग नहीं समझते कि किस तरह ये लोग उन्हीं समस्याओं के विस्तार में सहायक हैं जिन्हें दूर करने के प्रयत्न में ये लगे दिखते हैं। कांग्रेस और कम्युनिस्ट अच्छी तरह समझते हैं कि इन समस्याओं की वृद्धि में उनके प्रयत्न सहायक हो रहे हैं फिर भी राजनैतिक भूख के कारण ये लगातार अपने प्रयत्नों को जारी रखे हुए है। मुझे तो लगता है कि भारत की वर्तमान समस्याएँ तब तक नहीं सुलझ सकती जब तक भारत की समाज व्यवस्था को राजनैतिक प्रभाव से मुक्त न कर दिया जाय। इस घर को आग लग गई घर के चिराग से । जब तक हम

काई नया प्रकाश स्तंभ न बना लें तब तक ऐसे दीपक को बुझाकर कुछ दिन अंधेरे में रहने की आदत डालना ही सबसे अच्छा समाधान है।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न—1 आपने कई वर्ष पूर्व घोषित किया था कि दो हजार नौ तक भारत की राजनैतिक व्यवस्था में निर्णायक परिवर्तन हो जायगा और लोक नियुक्त तंत्र लोक नियंत्रित तंत्र के स्वरूप में स्थापित होगा। आपके विचारों के अनुसार अब ऐसे परिवर्तन की अवधि क्या होगी?

उत्तरः— मैं कभी ज्योतिषी नहीं रहा, न ही मैने कभी कोई भविष्यवाणी की है। परिस्थितियों के आधार पर मैंने जीवन में कई बार ऐसी भविष्यवाणियाँ की है जो सामान्यतया असंभव दिखती थीं। और सब पूरी हुई। इसी आधार पर मैंने दो हजार नौ तक राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन होने की संभावना बताई थी। मेरी धारणा थी कि सर्वोदय पूरी ताकत से इस प्रयास को सर्वोच्च प्राथमिकता देगा। किन्तु सर्वोदय के कई लोगों ने व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष की हिम्मत नहीं दिखाई जिससे हमारी गति तो कमजोर हुई ही, हम लोग आपसी विवादों में भी फंस गयें। मैंने दिल्ली प्रवास शुरू करके गति तीव्र करने का प्रयत्न किया है। अब समाज के अच्छे लोग विशेषकर सर्वोदय, संघ, आर्य—समाज और गायत्री परिवार को संस्था के रूप में न जोड़कर इनके सहमत लोगों को जोड़कर नया स्वरूप खड़ा करने का प्रयत्न चल रहा है जो एक कठिन कार्य है।

मैंने पूर्व में ही घोषित किया था कि मैं दो हजार सात के प्रारंभ में ही स्वयं को प्री तरह समाज को समर्पित कर दूँगा। मैंने वह कार्य किया है। जिस गति से आप लोग सक्रिय हैं उससे अब भी लगता है कि आगामी तीन वर्षो में परिवर्तन संभव है किन्तु अब मैं तो सिर्फ आप सबका सहायक मात्र हूॅ। परिवर्तन का वास्तविक संघर्ष तो आप सबको ही करना है। यदि आप इसी तरह सक्रिय रहेंगे तब तो व्यवस्था बदलेगी अन्यथा परिणाम विपरीत भी हो सकते हैं।

मैं पूरी तरह आशान्वित हूॅ कि दो हजार नौ निर्णायक वर्ष होगा किन्तु मैं इस बात की भविष्यवाणी नहीं कर सकता न ही दावा कर सकता हूॅ क्योंकि काम आपको करना है, मैं तो आपको सहायता ही करूॅगा। यदि कोई समयावधि घोषित होगी तो वह आप करेंगे, मैं नहीं।

प्रश्न.2— स्वतंत्रता के बाद भारत में कई भयंकर भूलें हुई है। इन भूलों का परिणाम भी हमें लम्बे समय तक झेलना पड़ा है। आपके विचार अनुसार ऐसी भूलों में सबसे अधिक भयंकर भूल कौन सी हुई तथा उस भूल का भारत पर क्या दुष्प्रभाव हुआ? अब उक्त भूल के प्रभाव को कम करने का क्या तरीका हो सकता है?

उत्तरः— निःसंदेह स्वतंत्रता के बाद भारत में कई भयंकर भूलें हुई है जिनके बुरे परिणाम अब तक भारत को भुगतने पड़ रहे हैं। ऐसो सूची बहुत लम्बी है। किन्तु गांधी हत्या एक ऐसी भयंकर भूल हुई जिसके आगे सभी भंयकर भूलें पिछड़ सी गई

हैं। गांधी हत्या ने भारत को एक अपूरणनीय क्षति पहुॅचाई जिसकी लपटें आज भी भारत को समाज के आधार पर भी झुलसा रही है और राज्य व्यवस्था के आधार पर भी।

गांधी हत्या ने हिन्दू समाज के मुॅह पर एक ऐसी कालिख लगाई है जो लाख धोने पर भी मिटने की जगह अधिक से अधिक चमकदार हो रही है। गांधी हत्या का आधार न राजनैतिक बताया गया न ही आपराधिक। गांधी की उपस्थिति का समाज पर भी बुरा प्रभाव नहीं बताया गया। गांधी हत्या का आधार बताया गया हिन्दू धर्म की सुरक्षा जबकि आज तक हिन्दू धर्म की कभी परंपरा ही नहीं रही है कि बल प्रयोग से धर्म की रक्षा करे। बल प्रयोग के द्वारा आततताइयों से समाज की रक्षा के तो अनेक उदाहरण मौजूद हैं किन्तु धर्म रक्षा में हिंसा के प्रयाग का यह उदाहरण हिन्दू धर्म के लिये कलंक मात्र है।

गांधी जी इस्लाम के येन केन प्रकारेण विस्तारवादी लक्ष्य को अच्छी तरह समझते थे। गांधी जी यदि जीवित होते तो भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता इस तरह विस्तार नहीं कर पाती जैसी अभी कर रही है। भारत का अधिकांश हिन्द् और थोड़े से मुसलमान इस्लामिक विस्तारवाद से चिन्तित हैं किन्तु इस्लाम विरोध का नेतृत्व उग्रवादियों के पास होने से ये लोग या तो चुपचाप हो जाते है या इस्लाम समर्थकों की हॉ में हॉ मिला देते है। गांधी जी यदि जीवित होते तो वे उदारवादी हिन्दुओं का इस्लाम के विरूद्ध नेतृत्व करते। गांधी जी उचित समय पर उचित निर्णय करने की कला जानते थे। जब कांग्रेस का नेतृत्व उग्र राष्ट्र भक्तों के हाथ में जाता दिखा तो गांधी जी ने अपने अंतिम अस्त्र का प्रयोग करके भी सुभाष चन्द्र बोस को किनारे किया। इससे उनकी कार्य शैली का खूब आभास होता है। गांधी जी तुष्टीकरण की वर्तमान नीति का पूरी तरह विरोध करते।

गांधी हत्या का दूसरा बहुत बड़ा नुकसान भारत की समाज व्यवस्था को हुआ। गांधी हत्या का सबसे अधिक लाभ सत्ता लोलुप गांधी वादियों ने उठाया। इन्होंने अपने राजनैतिक प्रतिद्वंदिी ''संघ'' को तो गांधी हत्या के नाम पर निपटा दिया और वैचारिक प्रतिद्वंदी सर्वोदय को बहला फुसलाकर दूर हटा दिया। गांधी ने जीवन भर लोकतंत्र का अर्थ लोक नियंत्रित तंत्र ही माना। अन्तिम समय तक वे गावों को निर्णय की स्वतंत्रता का प्रयत्न करते रहे किन्तु सर्वोदय परिवार को ना समझी और विनोबा जी के नेहरू परिवार के प्रति मोह ने ग्राम स्वराज्य का तात्पर्य ही विकृत कर दिया। जयप्रकाश जी जीवन भर जिस सहभागी लोकतंत्र की गांधीवादी आवाज को मुखर करते रहे, गांधीवादियों ने कभी उस आवाज को मजबूत नहीं किया। सन् पचहत्तर में सर्वोदय ओर संघ ने मिलकर जो संघर्ष किया उसमें से सहभागी लोकतंत्र भी गायब था और प्रतिनिधि वापसी का अधिकार भी। यदि गांधी जीवित होते तो भारत बिल्कुल भी लोकतंत्र की पश्चिमी जगत की लोक नियुक्त तंत्र की परिभाषा की नकल नहीं कर पाता। या तो भारत में भारतीय परिभाषा लोक नियंत्रित तंत्र पर आचरण होता या गांधी सत्ता लोलुप कांग्रेसियों के खिलाफ मोर्चा खोल देते और यदि गांधी सामने होते तो विनोबा सहित सभी गांधीवादी गांधी का साथ देते, नेहरू का नहीं।

गांधी जी श्रम, बुद्धि और सम्पत्ति के रिश्तों को भी बखूबो समझते हैं। उन्हें हमेशा यह चिन्ता लगी रहती थी कि स्वतंत्र भारत में कहीं श्रम को दबोच न लिया जाय। वे अपने खास लोगों का भी श्रम का महत्व भी बताते रहते थे और

अपने दैनिक जीवन में भी श्रम के उपयोग की सलाह देते थे। गांधी हत्या के बाद बुद्धिजीवियों और पूँजीपतियों के गठजोड़ ने औद्योगीकरण का ऐसा ताना बाना बुना कि श्रम पुरी तरह असहाय हो गया। ग्रामीण कृषि पर भी विपरीत असर पड़ा और ग्रामीण उद्योग धंधे तो समाप्त ही हो गये। ग्रामीण किसान आत्महत्या कर रहे है। गरीब, मजदूर भाग भाग कर शहरों की ओर आश्रय खोज रहे है, गरीब बेचारा गरीबी रेखा के बाहर भी नहीं निकल पा रहा है। गांधी जी के भक्त पूरी ईमानदारी से श्रम को जीवन में भी महत्व दे रहें है और प्रचार में भी। किन्तु अपने सुधरने मात्र से समाज सुधर जाता तो गायत्री परिवार तो लगातार ''हम सुधरेंगे तो जग सुधरेगा'' का नारा दे रहा है किन्तु हम चाहें जितना भी सुधरे हों, जग तो बिगड़ता ही गया क्योंकि जग नीतियों से सुधरता है आचरण मात्र से नहीं। आचरण नीतियों में सहायक मात्र होते हैं।

गांधी हत्या का सर्वाधिक नुकसान देश की समाज व्यवस्था को हुआ। अल्पसंख्यक राजनेता बहुसंख्यक समाज को गुलाम बनाने में सफल हो गये। पूँजीपतियों और बुद्धिजीवियों ने भी राजनीति में अपनी अपनी जगह बना ली और श्रम शोषण के नये नये तरीके खोजने में लग गये। राजनेताओं ने भारत पर ऐसा संविधान थोप दिया कि बहुसंख्यक समाज अल्पसंख्यक राजनेताओं के बीच से शासन पक्ष और विरोधी पक्ष के लिये मत देने को ही स्वराज्य मानने को मजबूर है। बहुसंख्यक समुदाय तंत्र को चुन सकता है पर नियंत्रण नहीं कर सकता है। लोकतंत्र की ऐसी शोषक परिभाषा गांधी हत्या का ही परिणाम है जो अब तक भारत भुगत रहा है और आगे भी भुगतता रह सकता है।

प्रश्न है कि अब क्या हो? अब न तो गांधी को जीवित किया जा सकता है न ही कोई नया गांधी बनाया जा सकता है। अब तो जो है उसी से संशोधन करना पड़ेगा। जो लोग राजनीति के खेल में लगे है वे अल्पसख्या में है। संघ का एक वर्ग पूरी तरह इन अल्प संख्यक राजनेताओं के साथ खेल में संलग्न है जिसका विरोध बहुसंख्यक संघ नहीं कर पा रहा। दूसरी ओर सर्वोदय ने राजनीति की ओर देखना ही बंद करके उन्हें लूटमार और शोषण की खुली छुट दे दी है। बीच का रास्ता निकालना होगा। संघ को राजनीति से दूरी बनानी होगी और सर्वोदय को दूरी घटानी होगी। संघ को गांधी हत्या को समाज विरोधी कार्य घोषित करना होगा और सर्वोदय को गांधी हत्या को भूलकर आगे बढ़ना होगा। संघ को हिन्दू राष्ट्र का नारा छोड़कर समान नागरिक सहिता को मुख्य आधार बनाना होगा और सर्वोदय को मुस्लिम तुष्टीकरण से निकलकर धर्म निरपेक्षता की वास्तविकता परिभाषा की ओर बढ़ना होगा। संघ और सर्वोदय ने स्वतंत्रता के बाद गांधी हत्या का सर्वाधिक नुकसान भी सहा है और लाभ भी उठाया है। भारत की सम्पूर्ण अव्यवस्था के दुष्परिणामों का दायित्व दोनों को स्वीकार करना चाहिये। दोनों संस्थाओं को एक साथ या अलग अलग बैठकर विचार करना चाहिये किन्तु इस विचार में सबसे बड़ी बाधा दोनों ओर ही अल्पसंख्यको के हितैषियों की उपस्थिति है। अल्पसंख्यक राजनेताओं के प्रतिनिधि ऐसा किसी हालत में होने ही नहीं देंगे। ऐसी स्थिति में संघ और सर्वोदय के बहुसंख्यको को एक साथ बैठकर विचार मंथन की शुरूवात करनी चाहिये। यदि ऐसा हो सका तो राजनीति से दूर रहकर भी राजनीति पर नियंत्रण संभव है और तब हम गांधी हत्या के दुष्परिणामों से बचाव में समर्थ हो सकते हैं।

प्रश्नः–3 नमक आंदोलन की अब क्या स्थिति है? अन्य संस्थाओं से आप मिलकर काम क्यों नहीं करते?

उत्तरः—गांधी जी ने हमें काम के तीन सुत्र दिये थे (1) गांवो की अपनी गांव सम्बन्धी निर्णय मे अधिकतम स्वतंत्रता, (2) गांव क निवासियों को ऐसी स्वतंत्रता के सदुपयोग की ट्रेनिंग, (3) समाज में श्रम के महत्व और सम्मान का अधिक विकास। इसे ही गांधी जी ने शासन मुक्ति शोषण मुक्ति का नाम दिया था। हमने किया इसक ठीक विपरीत। गांवो को गांवो सम्बन्धी निर्णय की स्वतंत्रता बढ़ाने के स्थान पर घटा दी और दूसरी ओर बिना ऐसी स्वतंत्रता मिले ही यथा स्थिति में जीने की कला की ट्रेनिंग देने के लिये अनेक संस्थाएँ संगठन और मंच बना लिये। आज समाज लोक नियंत्रित तंत्र चाहता है जिससे किसी भी संस्था या संगठन का दूर दूर तक का सबंध नहीं।

गांधी जी के सामने लक्ष्य बिल्कुल स्पष्ट था। लक्ष्य की आवश्यकता के अनुरूप वे मार्ग चुनते थे। गांधी जी का विदेशी कपड़ो की होली जलाने का आंदोलन विदेशी सत्ता के विरूद्ध लक्ष्य करके बनाया हुआ था न कि विदेशी कपड़ो के विरूद्ध। हम विदेशी वस्तुओं के विरूद्ध आंदोलन चला रहे है जिसका भारतोय शासन व्यवस्था पर दूर दूर तक प्रभाव नहीं पड़ता। अनेक संगठन और संस्थाएँ तो भारतीय शासन व्यवस्था द्वारा समाज में अधिकाधिक हस्तक्षेप की हिमायत तक करती देखी जा सकती है। पिछलें दो महिनों में ही भारतीय राज्य व्यवस्था ने चार नये कानून बनाकर समाज पर अपनी पकड और मजबूत की है। (1) बाल श्रम कानून, (2) बाल विवाह कानून, (3) घरेलू महिला अत्याचार निवारण कानून, (4) आरक्षण कानून। इन कानूनों के माध्यम से समाज के साथ साथ परिवार के आन्तरिक मामलों में भी कानून का हस्तक्षेप बढ़ गया है। इन कानूनों से समाज, जाति, धर्म, लिंग, उम्र के आधार और मजबूती से विभाजित होगा। इन आवश्यक कानूनों का विरोध तो हुआ ही नहीं, इसके विपरीत कई सामाजिक संस्थाओं तक ने इन कानूनों का समर्थन किया। अखबारों में ऐसे कानूनों के समर्थन में संगठनों, विद्वानों तथा लेखकों के विचार तथा लेखों से अखबार भरे रहते हैं जिसके बदलें में सरकारें ऐसे संगठनों पत्रकारों, लेखकों को समय समय पर विज्ञापन अनुदान, या सम्मान से पुरस्कृत करती रहती है। ऐसा एक दुष्चक्र भारत में बना हुआ है जो लगातार भारत को लोक नियंत्रित से दूर लोक नियुक्त तंत्र की ओर ल जा रहा है।

भारत सरकार ने अभी साधारण नमक खाने पर प्रतिबंध लगा दिया। सामाजिक संस्थाओं ने कुछ प्रस्ताव पारित करके काम खत्म कर दिया। संस्थाओं ने समाज के समक्ष यह प्रमाणित कर दिया कि वे बिल्कुल लाचार भले ही हो गई हो किन्तु मरी नहीं है। मैं भी ऐसी नमक विरोधी कई बैठकों में गया और पाया कि उन्हें तो अपना लक्ष्य ही मालूम नहीं है। उनकी मीटिंग से ही स्पष्ट था कि कहीं कोई दम की बात तो नहीं है। सरकार भी इनकी ताकत जानती थी। और जैसा दिखता था वैसा ही परिणाम हुआ।

मुख्य प्रश्न यह था कि नमक आंदोलन के माध्यम से सरकार के अधिकार को चुनौती देना आपका लक्ष्य है या सरकार के गलत आदेश का विरोध। अब तक जो भी नमक आंदोलन हुआ वह सरकार के गलत आदेश के विरूद्ध था, अधिकार के नहीं। इसका अर्थ हुआ कि हम रसोई घर में कौन सा नमक खायें इस संबंध में निर्णय करने का शासन को अधिकार है यदि वह जनहित में हो। प्रश्न उठता है कि जनहित की अन्तिम परिभाषा शासन तय करेगा या भीड़। यदि भीड़ तय करेगी तो उसका तरीका क्या होगा और यदि शासन तय करेगा तो फिर विरोध क्यों? नमक आंदोलन में सक्रिय

संस्थाओं को पहले यह बताना होगा कि वे इस आंदोलन के माध्यम से शासन से अपनी भूल सुधार की मांग कर रहे हैं। मेरी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है कि मैं न शासन से सुधरने का कोई निवेदन करने के पक्ष में हूॅ न ही नमक आदेश वापसी पर जोर देने के पक्ष में हूॅ। मैं तो इस पक्ष में हूॅ कि शासन क इस और ऐसे ही अन्य आदेशों की आड़ में जन जागरण करके निर्णय का अधिकार ही नीचे की इकाइयों को दिलवा सकॅू। मैं शासनकी जनकल्याणकारी राज्य की प्राथमिकता को पूरी तरह जनविरोधी मानता हूॅ। शासन न्याय और सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता घोषित करे। न्याय और सुरक्षा संबंधी कानून बनाना शासन का स्वाभाविक दायित्व भी है और अधिकार भी। जनहित के अन्य मामलों में हस्तक्षेप शासन का तब तक स्वाभाविक अधिकार नहीं जब तक समाज की निचली इकाइयॉ शासन से वैसा कोई विशेष निवेदन न करें।

ऐसी स्थिति में क्या करें। अभो एक भी ऐसा संगठन नहीं जो शासन के अधिकारों में कटौती हेतु जनमत जागरण की दिशा में सोचे। ये संगठन किसी न किसी रूप में या तो यथा स्थिति को मजबूत करने में सहायक है अथवा उसकी भूलों को सुधरवाने में। इसलिये हमें मजबूर होकर भिन्न राह पकड़नी पड़ रही है। इस संबंध में मै स्पष्ट कर दॅू कि यदि कोई एक भी संस्था यह घोषित करे कि वह गांधीजी के ग्राम स्वराज्य अर्थात् गांव का गांव सम्बन्धी मामलों में निर्णय की अधिकतम स्वतंत्रता के सिद्धांन्त पर काम करने के लिये तैयार है तो हम सब साथी उनके साथ सामंजस्य कर सकते हैं। किन्तु यदि आप वर्तमान व्यवस्था को मजबूत करने के प्रयास में ग्राम स्वराज्य का ढोंग कर रहे हैं तो आप अलग दुकान खुलने को रोक नहीं सकेंगे।

प्रश्नः–4 अफजल गुरू संबंधी आपका लेख पढ़ा आप पहले व्यक्ति है जिनहोंने ऐसे मामलों में सार्वजनिक फांसी के पक्ष में तर्क दिये हैं। अन्य लेखकों के विचारों में कहीं न कहीं लेखक का पूर्वाग्रह भी झलकता है किन्तु आपका लेख पूरी तरह स्पष्ट होते हुए भी पूर्वाग्रह दोष रहित है।

पंजाब केसरी तेईस दिसम्बर को तवलीन सिंह के लेख में बुकर पुरस्कार विजेता अरूंधती राय की पुस्तक के अंश प्रकाशित हुए हैं जिसमें लिखा गया है कि भारत बिना ठोस सबूतों के ही तेरह दिसम्बर को हुए संसद आक्रमण के बाद पाकिस्तान के साथ युद्ध करने को उतावला था। पुस्तक में संदेह किया गया है कि तेरह दिसम्बर को संसद पर आक्रमण के पूर्व ही युद्ध भारत ने तैयारियॅा शुरू कर दी थीं। आपकी राय में क्या अरून्धती जी इस तेरह दिसम्बर के आक्रमण में कोई सरकारी साजिश का संदेह पैदा करना चाहती है? आपको इस सम्बन्ध में कितनी जानकारी है?

उत्तरः– अरून्धती जी एक महान हस्ती है। ब्रिटेन और अमेरिका को जी भरके गालियॅा देती है और यही देश अरून्धती राय को पुरस्कार देकर सम्मानित भी करते हैं जिसे प्राप्त करके वे गौरवान्वित होती हैं। यह क्या गड़बड़ झाला है यह मुझे पता नहीं। मैंने दूनिया के कई जासूसों के विषय में सुना था कि उन जासूसों का भेद अमेरिका या रूस जैसी सर्वोच्च गुप्तचर एजेन्सियॅा भी नहीं पकड़ पाती थी। इन उच्च पुरस्कार प्राप्त लोगों की चाल चरित्र और चेहरे क्या है? वे क्या बोलते हैं, उनके कहे का क्या प्रत्यक्ष अर्थ है और क्या परोक्ष यह वे जानें। मैं छोटे मॅुह इन बड़ी हस्तियों की बात करना उचित नहीं समझता क्योंकि डर लगता है कि कहीं कोई बात गुस्ताखी में शामिल न हो जावे।

प्रश्नः—5 भारतीय जनगणना के आकड़े बताते हैं कि सन् पचास में मुस्लिम आबादी असम मं सात प्रतिशत थी जो अब अड़तालीस प्रतिशत है, पश्चिम बंगाल में ग्यारह थी जो अब चौंतीस हो गई है और त्रिपुरा में छः से बढ़कर सैंतीस हो गई है। आप इसे राष्ट्र के लिये कितना खतरनाक मानते हैं और समाज क लिये कितना? आप इसके लिये किसे दोषी मानते हैं?

उत्तरः— दुनिया के किसी भी धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में इस्लाम की संख्या वृद्धि समाज को अधिक क्षति पहुॅचाती है और राष्ट्र को कम क्योंकि मुसलमान जहॉ भी संख्या अनुपात में आगे बढ़ता है वहॉ समाज के अन्य वर्गो के साथ गुलामों के समान ही व्यवहार करता है समान नहीं। सन् सतालीस के राष्ट्रीय विभाजन में राष्ट्र को जो क्षति हुई उससे कई गुना अधिक समाज को हुई जिसके लाखों लोग या तो मारे गये या अमानवीय अत्याचारों के शिकार हुए। कुछ दिन पूर्व मैं सहारनपुर के एक परिवार में भोजन कर रहा था तो बताया गया कि उस परिवार के एक विवाहित युवक की सन् सैंतालीस विभाजन में बिना कारण हत्या कर दी गई थी। उसकी नवजवान पत्नी ने सन्यास ले लिया जा अब भी सन्यासी है। मेरे मन पर गहरा असर हुआ। वह परिवार समाज का एक अंग था और है। उस परिवार के साथ जो कुछ हुआ उससे न राष्ट्र का कुछ बिगड़ा न धर्म का। बिगड़ा तो सिर्फ समाज का जिसके अनेक परिवार आज तक झुलस रहे हैं। मैं भारत में इस्लाम की बढ़ती जनसंख्या के प्रतिशत का समाज के लिये खतरे के रूप में देखता हूॅ।

इस खतरे की चिन्ता करने का ठेका दो ने लिया हुआ है, (1) सत्तारूढ़ कांग्रेस ने, (2) विपक्षी संघ परिवार ने। कांग्रेस पार्टी अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिये इस खतरे की अनदेखी कर रही है और विपक्षी संघ परिवार इस खतरे से निपटने के लिये सत्ता की शर्त जोड़ रहा है। दोनों की राजनैतिक महात्वाकांक्षाओं ने हमें इस स्थिति तक पहुॅचा दिया है कि अब पुनः सन सैंतालीस क सामाजिक संघर्ष की याद सताने लगी है। संघ परिवार तो शुरू से ही मानता है कि मुसलमानों के साथ सामाजिक संघर्ष ही इस समस्या का समाधान है। मैं प्रारंभ से ही इस प्रयास को असफल मानता हूॅ। मेरा सदा से यह मानना है कि मुसलमानों के साथ सामाजिक संघर्ष की अपेक्षा संवैधानिक संघर्ष अधिक प्रभावकारी होगा। संघ इस बात को न पहले मानता था न अब मानने का तैयार हे। संघ अब भी इस गलतफहमी में है कि मुस्लिम आवादी वृद्धि के नाम पर हिन्दू समाज उसे सत्ता दे देगा। ऐसा न पहले हुआ है न होगा और संघ की वर्तमान असफल नीतियां के भरोसे विदेशी मुसलमान भारत में आ आकर संख्या विस्तार करते रहेंगे। संघ प्रमुख सुदर्शन जी ने तो एक दिन हिन्दुओं को आबादी बढ़ाने की सलाह देकर ऐसी बात कह दी जैसे कि संघ ने हार ही मान ली हो। अब यदि मुस्लिम आबादी बढ़ी तो उसके लिये संघ दोषी नहां क्योंकि हिन्दुओं ने मुसलमानों से अधिक बच्चे पैदा ही नहीं किये तो संघ का क्या दोष है? मेरे विचार से यह समस्या कोई मजाक नहीं है जो ऐसे हल्के उपायों से सुलझ जाय। इसके लिये तो संघ का गंभीरता से नीतियों में यू टर्न लेना होगा। आप विचार करिये कि आगामी चुनाव में संघ फिर से अटल जी के नाम पर वोट मांगने की तैयारी कर रहा है। यदि अटल जी की सरकार ही इस समस्या का समाधान थी तो फिर दो हजार चार में बनती हुई अटल सरकार को रोकने में संघ की भूमिका गलत थी क्या? क्या अब अटल जी ने अपनी उस समय की भूलें सार्वजनिक रूप से

मान ली हैं? यदि वहीं अटल हैं और वही संघ तो फिर दुबारा वह कसरत क्यों? भारत की वर्तमान राजनैतिक स्थिति इस समस्या का समाधान नहीं कर सकती क्योंकि सत्तारूढ़ कांग्रेस और विपक्षी संघ परिवार को समाज की चिन्ता कम और सत्ता की अधिक है।

मेरे लिखने का यह आशय नहीं है कि इस समस्यया का कोई समाधान ही नहीं है। समाधान है और बहुत आसाान है यदि हम मिलकर चर्चा करने के लिये तैयार हों। मैने उपर लिखा है कि सामाजिक टकराव इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। हिन्दुओं और मुसलमानों के स्वभाव म इतना फर्क है कि बहुसंख्यक हिन्दू अल्पसंख्यक मुसलमान से भी लड़कर नहीं जीत सकता। मैने लिखा है कि इस समस्या का राजनैतिक समाधान है अर्थात् यदि मुसलमानों को राजनैतिक विशेषाधिकार समाप्त करके उन्हें आम नागरिकों के समान रहने को मजबूर कर दिया जावे तो सारी समस्या सुलझ जायेगी। अधिकांश मुसलमान तो भारत में दारूल इस्लाम का सपना भूल कर सबके साथ सामाजिक भाईचारे को विश्वास में बदल देंगे और जो नहीं बदल सकेंगे वे भारत छोड़कर जाना ही उचित समझेंगे। कड़ाई से समान नागरिक संहिता लागू करनी होगी।

प्रश्न उठता है कि यह कार्य होगा कैसे? मेरे विचार से संघ परिवार को अपने मुद्दों में से मंदिर और हिन्दू राष्ट्र जैसे मुद्दों को छोड़ना होगा। गोहत्या भी सिर्फ भावनात्मक घिसा पिटा मुद्दा मात्र रह गया है। ये तीनों ही मुद्दे न तो वैचारिक हैं न ही इनमें उबाल पैदा करने की शक्ति है। समान नागरिक संहिता का मुद्दा उबाल तो पैदा नहीं कर सकता किन्तु वैचारिक स्वरूप दे सकता हैं। धर्म परिवर्तन कराने पर रोक और अल्पंसख्यक बहुसंख्यक भावना की समाप्ति इस संघर्ष को धार दे सकते हैं। साम्प्रदायिकता का इसमें निर्णायक समाधान दिखता है।

किन्तु इसी प्रश्न के साथ एक दूसरा प्रश्न भी जुड़ा है कि यदि हमने सब काम छोड़कर साम्प्रदायिकता के समाधान में पूरी ताकत लगा भी दी और अगले चार पांच वर्षो में कुछ सफलता भी पा ली तो भारत में अन्य दस समस्याओं ''(1) चोरी, डकैती, लूट, (2) बलात्कार (3) मिलावट, (4) जालसाजी, (5) हिंसा, आंतकवाद, (6) भ्रष्टाचार, (7) चरित्रपतन, (8) जातीय कटुता, (9) आर्थिक असमानता और (10) श्रमशोषण'' का भविष्य क्या होगा? यदि चार चार वर्ष एक एक समस्या के समधान में लगा तो समाज का क्या बचेगा? क्या साम्प्रदायिकता अन्य दस समस्याओं की अपेक्षा इतनी ज्यादा खतरनाक है कि अन्य समस्याओं की अनदेखी करके इसका समाधान किया जावे? मैने इस सम्बन्ध में एक टेस्ट किया। सौ लोगों को ग्यारह समस्याओं की सूची देकर उन्हें प्राथमिकता के क्रम से लिखने का निवेदन किया गया। सबके उत्तरों के बाद चौंकाने वाले नतीजे आये। एक सौ में से ''(1) सात ने चोरी, डकैती, अपहरण, (2) आठ ने बलात्कार, (3) सात ने मिलावट (4) सात ने जालसाजी धोखधड़ी, (5) दस ने हिंसा और आतंकवाद, (6) तेरह ने भ्रष्टाचार, (7) तेरह ने चरित्र पतन, (8) आठ ने जातीय कटुता, (9) नौ ने साम्प्रदायिकता, (10) नौ ने आर्थिक असमानता और (11) नौ ने श्रम शोषण'' को सबसे अधिक गंभीर समस्या मानकर समाधान को सर्वोच्च प्राथमिकता की इच्छा व्यक्त की। इसी तरह अन्तिम प्राथमिकता के क्रम में किसी ने भी भ्रष्टाचार, चरित्र पतन, आतंकवाद, और साम्प्रदायिकता का उल्लेख नहीं किया। नतीजा यह निकला कि सौ में से नब्बे

लोग तो साम्प्रदायिकता को सबसे गंभीर समस्या मानते ही नहीं। जो दस मानते हैं। उनमें से एक दो ऐसे होंगे जो मुसलमानों को अकेला दोषी मानते हों। कुल मिलाकर निष्कर्ष यह है कि सभी ग्यारह समस्याऍ भारत में समाज के लिये चिन्ताजनक रूप से गंभीर स्वरूप ग्रहण कर चुकी हैं और जब मुस्लिम साम्प्रदायिकता मात्र के चिन्तन से हमारी नींद उड़ जाती है तो यदि सबकी एकसाथ कल्पना की जाय तब तो रूह ही कांप जायेगी। इसलिये हमें कोई न कोई ऐसा मार्ग निकालना होगा जो सभी समस्याओं पर एक साथ प्रभावकारी हो।

राजनेताओं पर तो अब कोई भरोसा करना ही व्यर्थ है। जब प्रधानमंत्री अपनी कुर्सी के लिये समाज की चिन्ता छोड़कर नेताओं की चिन्ता करने में लगे हैं और विपक्ष के नेता का भी सारा समय कुर्सी की तिकड़म में ही बीत रहा है तो साधारण कार्यकर्ता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अब राजनीति और राजनीतिज्ञ या तो हमारी समस्याऍ बढ़ा सकते है या हमें भगवान भरोसे छोड़ सकते हैं। जो लोग अब भी राजनीति और राजनीतिज्ञों से ग्यारह समस्याओं के समाधान की लेश मात्र की उम्मीद करते हैं वे या तो स्वयं भ्रम के शिकार हैं या समाज को भ्रम में डाले रखना चाहते हैं। अब तो हमें स्वयं ही समाधान करना होगा। यदि हम राजनीति में घुसकर कुछ परिवर्तन की बात करते है तो वह संभव नहीं क्योंकि राजनीति में घुसते ही हर आदमी की सोंच वैसी ही हो जा रही है और यदि राजनीति निरपेक्ष रहकर समाज का काम करें तो सुलझना संभव ही नहीं है क्योंकि हमारे दूर हो जाने के बाद तो उन्हें और अधिक स्वच्छन्दता हो जायगी। हमें तो बीच का मार्ग निकालना होगा अर्थात् राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर नियंत्रण का एक नया प्रयास करना होगा।

हमारे सामने अभी ग्यारह समस्याऍ तत्काल बढ़ती हुई दिख रही हैं। जिस तरह हमने साम्प्रदायिकता के समाधान का निश्चित मार्ग निकाला है उसी तरह अन्य दस समस्याओं पर भी अलग अलग चिन्तन करके निश्चित परिणाम दायक मार्ग निकाल लिया गया है। किन्तु अन्तिम और गंभीर प्रश्न यह है कि इसे करेगा कौन? जो लोग राजनीति से जुड़े है उन्हें सिर्फ सत्ता ही दिखती है समाज तो दिखता ही नहीं। जो लोग राजनीति से दूर हैं उन्हें सिर्फ समाज ही समाज दिखता है राजनीति नहीं और समाधान सिर्फ वही कर सकता है जो राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर नियंत्रण का प्रयास करे। तात्कालिक रूप से चार संगठन इस कार्य की पहल कर सकते हैं (1) संघ, (2) सर्वोदय, (3) आर्य समाज, (4) गायत्री परिवार। अन्य अनेक संगठन तो आगे जुड़ जायंगे यदि ये चार पहल करें। इनमें से आर्य समाज और गायत्री परिवार राजनीति से बहुत दूरी बनाकर रहना चाहते है, संघ दिन रात राजनीति में ही लगा हुआ है और सर्वोदय नेतृत्व वामपथियो के इशारे पर चल रहा है। फिर भी इन चारो को यदि एक साथ बिठाने में भी सफलता मिल जावे तो सम्पूर्ण ग्यारह समस्याओं के समाधान का मार्ग खुल सकता है। यदि इन चारो का शीर्ष नेतृत्व किसी कारण से ऐसी हिम्मत न भी करे तो इनके कार्यकर्ताओ को एसी पहल अवश्य ही करनी चाहिये।

प्रश्न–6 आपको गांधीवाद की सफलता पर कितना विश्वास है? आप स्वदेशी आंदोलन के विरूद्व है। आप शराब बन्दी का भी समर्थन नही करते।आपकी खादी के प्रचार में भी कोई रूचि नही है। गोहत्या बन्दी पर आपका रूख अब तक साफ नही है। आप गांधी के बताये किसी मार्ग पर तो चलते नही। फिर आप कैसे गांधीवादी है?

उत्तर—किसी भी वाद की एक आत्मा होती है और एक शरीर। संघर्ष गांधीवाद की आत्मा है और निर्माण शरीर।स्वतंत्रता के पूर्व गांधीजी का लक्ष्य स्वतंत्रता संघर्ष था, शराब बन्दी, स्वदेशी, खादी, आदि समाज निमार्ण क कार्य उसमें सहायक थे। यदि गांधी स्वतंत्रता सघर्ष छोड़कर खादी शराब बन्दी गोहत्या बन्दी आंदोलन करते तो न गांधी कभी गांधी नही बन पाते न ही उनकी विश्व में वैसी पहचान बन पाती जो आज बनी है। इसके विपरीत यदि गांधी खादी, शराब बन्दी स्वदेशी को छोड़कर भो भारत में अहिंसक संघर्ष के माध्यम से भारत को स्वतंत्रता दिलाने में सफल हो जाते तो वे गांधी तो बन ही जाते यद्यपि उन्हे स्वतंत्र भारत को दिशा देने में भारी संकटो का सामना करना पड़ता। मेरे विचार में संघर्ष और निमार्ण का अद्भूत तालमेल ही गांधीवाद है स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही बातो बातों में बिड़ला और नेहरू के विरूद्ध संघर्ष की चेतावनी गांधी और गांधीवाद का वास्तविक चरित्र स्पष्ट करती है।

गांधी के बाद विनोबा आये जिन्होंने संघर्ष को त्यागकर निर्माण को ही गांधीवाद घोषित कर दिया। जयप्रकाश जो ने बीच में संघर्ष की लाइन पकड़ी किन्तु वह लाइन व्यवस्था परिवर्तन से हटकर सत्ता संघर्ष की गलत दिशा में चली गई। जयप्रकाश संघर्ष के असफलता के बाद गांधीवादियों ने संघर्ष की लाइन ही छोड़ दी है। यदा कदां बंग जी और मेरठ वाले कृष्ण कुमार खन्ना जी संघर्ष की चर्चा करते है। किन्तु इनकी राह पर कोई चलने को तैयार नहीं। शरीर का तभी तक महत्व है जब उसमें आत्मा हो। आत्मावान शरीर के लिये तो सभी प्रयत्न करने चाहिये किन्तु आत्मा के निकल जाने के बाद शरीर तो शव बन जाता है।

मेरे विचार में शासन मुक्ति शोषण मुक्ति का संघर्ष गांधीवाद की आत्मा है। यदि इन दोनों कार्यो को छोड़कर कोई स्वदेशी, उन्नत खेती, खादी और गोहत्या आंदोलन होता है तो वह बिना आत्मा का शरीर है और इन दोनों के साथ होता है तो वह जीवित गांधीवाद है। मैं स्वदेशी शराब बंदी, खादी आर गोहत्या बन्दी सरीखे सभी आंदोलनों के पक्ष में हूँ यदि ये आंदोलन सत्ता के अकेन्द्रीयकरण और श्रम शोषण मुक्ति के साथ हों और यदि सत्ता सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण से संघर्ष को किनारे करके कोई आंदोलन होता है तो गांधीवाद की विकृत परिभाषा से दूर रहना ही मेरे लिये ठीक लगता है।

प्रश्नः—7 ज्ञान तत्व एक सौ चौबीस में ईश्वर दयाल जी की टिप्पणी के उत्तर में आपने एक महत्वपूर्ण दिशा दी है। ईश्वर दयाल जी के विचार पढ़ने से तो बिल्कुल ठीक लगे और आपका उत्तर पढ़ा वह भी ठीक लगा। जातीय आरक्षण का लाभ बुद्धिजीवी अवर्णो ने ही लपक लिया यह बिल्कुल ठीक है। यदि आरक्षण नहीं होता तो उक्त सारा लाभ बुद्धिजीवी सवर्ण ही उठा लेते यह भी पूरी तरह सच है। श्रमजीवी अवर्णो को न लाभ था न है। उन्हें कम से कम इतना तो संतोष है कि बुद्धिजीवी सवर्णो का एकाधिकार टूटा। अब सवर्ण आरक्षण का विरोध इसलिये नहीं कर रहे हैं कि श्रमजीवी अवर्णो को उसका लाभ मिले। वे तो यह मानकर विरोध कर रहें है कि वर्तमान आरक्षण व्यवस्था टूटने से बुद्धिजीवी सवर्णो को कुछ न कुछ अधिक हिस्सा मिलेगा ही। इतनी कठोर आरक्षण व्यवस्था में ही कई सवर्ण किसी न किसी तिकड़म से स्वयं को अवर्ण सिद्ध करके अवर्णो का लाभ उठाने में घुसपैठ कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में आरक्षण के विरोध में आपके विचार तर्क पूर्ण होते

हुए भी अवर्ण श्रमजीवी ऐसे विरोध से क्यों सहमत हो? आप कुछ अधिक स्पष्ट करें। यह भी बतावें कि भूल कहाँ हुई है और अब कैसे सुधर सकती है।

उत्तर– सन् सैंतालीस के पूर्व शोषक सवर्णो द्वारा अवर्णो का शोषण और अत्याचार स्वयं सिद्ध था। आर्य समाज लगातार इसके विरूद्ध सामाजिक क्रान्ति के लिये प्रयत्नशील था। गांधी जी द्वारा इस अभियान का नेतृत्व लेने के बाद जो उक्त सामाजिक क्रान्ति ने बहुत जोर पकड़ा। गाजीपुर निवासी पण्डित नन्दलाल की अछूत जाती जानते हुए भी पूरे रामानुजगंज में उन्हें अन्य ब्राह्मणों से अधिक सम्मान प्राप्त था और वे मेरे घर में रसोई घर में बैठकर भोजन करते थे। आर्य समाज के मौन प्रयत्न ठीक दिशा में थे। किन्तु संवैधानिक आरक्षण ने इन प्रयत्नों को बहुत क्षति पहुँचाई। उस समय नन्दलाल जी ब्राह्मण पद पाकर स्वयं को गौरवान्वित समझते थे। नई व्यवस्था के नन्दलाल स्वयं को पुनः अवर्ण बनाये रखना आवश्यक समझते हैं।

मैं छुआछूत का सदा विरोधी रहा। मेरी दुकान में काम करन वाले एक अछूत को घर में भी अछूत नहीं माना जाता था। सन् चौरान्नवे में हमारे आश्रम में करीब दो सौ लोगों का एक तीन दिन का सम्मेलन था जिसमें आये हुए कुछ लोगों की कठिनाई को देखते हुए आश्रम के भोजन प्रवंधक ने मेरे उक्त स्टाफ को रसोई घर से दूर रहने की सलाह दी। उक्त अवर्ण स्टाफ ने इस सलाह की समान्य बात का इतना बतंगड बनाया कि वह भोजन प्रबंधक से झगड़ गया। मैने सारे प्रकरण पर खूब सोचा और उक्त अवर्ण युवक को अपनी दुकान की नौकरी से भी हटा दिया। मुझे आश्चर्य हुआ कि जो लोग पहले उक्त युवक के रसोई म जाने के विरूद्ध थे वे भी उसके प्रति समर्थन में आ गये किन्तु फिर भी मैंने उस युवक को नौकरी में नहीं रखा। मेरे विचार से समानता का व्यवहार हमारा कर्तव्य है, उसका अधिकार नहीं। उक्त आयोजन न सरकारी था न सार्वजनिक। उक्त आयोजन की सम्पूर्ण व्यवस्था में उक्त युवक न सहयोगी था न सहभागी। उसने आयोजन में जातीय समानता को अपना अधिकार समझकर गलत परंपरा स्थापित करने का प्रयत्न किया जो मुझे स्वीकार नहीं था। जातीय समस्या को उलझाने में यही भूल हुई है। जाति व्यवस्था को मान्य बनाकर अवर्णो को उपर उठाने का जो प्रयत्न हुआ उससे लाभ कम और हानि अधिक हुई। जाति व्यवस्था को अमान्य करके अवर्ण सवर्ण का भेद् दूर करने का प्रयत्न लाभ ही लाभ करता, हानि नहीं करता।

जो लोग भी वर्तमान आरक्षण व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठा रहे हैं उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो पुरानी सवर्ण जातीय व्यवस्था के पक्षधर हैं। ये लोग अपने शोषण के एकक्षत्र अधिकार में कटौती से दुःखी है। जो लोग आरक्षण का समर्थन कर रहे हैं वे सब आरक्षण का लाभ उठाकर मजबूत हो चुके लोग हैं। दोनों ही अपने अपने स्वार्थ के आधार पर आरक्षण का समर्थन या विरोध कर रहे हैं। मेरी स्थिति वैसी नहीं है। मैं स्पष्ट देख रहा हूॅ कि श्रमजीवी अवर्णो को न आरक्षण के समर्थन से लाभ है न विरोध से। उन्हें तो लाभ तभी है जब श्रम मूल्य बढ़े और गरीबी रेखा से उनका जीवन स्तर उपर हो। मैं सैद्धांतिक रूप से आरक्षण को उचित मार्ग नहीं मानता। फिर भो यदि श्रम मूल्य वृद्धि और गरीबी रेखा की समाप्ति के बिना कोई आरक्षण विरोध होता है तो उसमें मेरी कोई रूचि नहीं हैं। यदि श्रम के साथ न्याय करने में आरक्षण

सहायक हो तो मैं उसका समर्थन भी कर सकता हूॅ किन्तु जातीय आरक्षण के नाम पर श्रमजीवी अवर्णो का शोषण करने वाले बुद्धिजीवी अवर्णो का उसी तरह विरोध करूँगा जिस तरह शोषण करने वाले सवर्णो का किया था।

इसी दिसम्बर माह के प्रथम सप्ताह में राकेश रफीक जी ने एक बैठक बुलाई थी जिसमें सब प्रकार के लोग थे। एक सज्जन कुछ ज्यादा ही स्वयं अवर्ण प्रतिनिधि सिद्ध करने के प्रयास में लगे थे। विषय से हटकर बार बार आवेश पूर्ण शब्द प्रयोग करना अपनी अलग पहचान बनाने के लिये आवश्यक समझते थे। एक साथी ने हिन्दुस्तान हमारा गीत गाया तो हिन्दुस्तान शब्द सुनकर ही वे आवेश में आ गये। उनके बगल के एक साथी ने टोका तो उनसे झगड़ने लग। ऐसे पेशेवर लोग अवर्णो का बहुत नुकसान करेंगे। अवर्ण होने का यह मतलब नहीं है कि सभी सवर्णो के साथ अनावश्यक झगड़ा और अपमान का व्यवहार करें। वहॉ बैठे अन्य अवर्णो को भी उनका व्यवहार नापसंद था। उचित होगा कि ऐसे पेशेवर भरे पेट वालों पर सब मिलकर नियंत्रण करें जिससे शरीफ सोच पर बुरा असर न हो।

पत्रोत्तर

प्रश्न–1 श्री लालचन्द्र ढिस्सा, रघुनाथपुर, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश।

ज्ञान तत्व मिलता रहता है। कहीं आप अकेन्द्रीयकरण शब्द प्रयोग करते हैं कहीं विकेन्द्रीयकरण। दोनों में फर्क क्या है? इन दोनों शब्दों से भारतीय समाज खासकर हाशिये के लोगों पर क्या प्रभाव होगा?

उत्तरः– अधिकार और शक्ति बिल्कुल भिन्न अर्थ रखने वाले शब्द है। किसी व्यक्ति के अधिकारों का प्रयोग जब किसी अन्य को मिलता है तब वह अधिकार दूसरे व्यक्ति की शक्ति अर्थात् पावर बन जाता है। आम लोगों के जब ऐसे भिन्न भिन्न अधिकार किसी एक इकाई के पास इकट्ठे होते हैं तब उसे केन्द्रीयकरण कहते है और जब ऐसे अधिकार मूल इकाई के पास ही रहते हैं, किसी शासन के पास इकट्ठे नहीं होते उसे अकेन्द्रीयकरण कहते है।

जब सत्ता अपनी शक्ति उसकी मूल इकाई को सौंप देती है उसे अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण कहते हैं जो एक प्रकार से अकेन्द्रीयकरण के समान ही है। किन्तु जब सत्ता अपनी शक्ति उसकी मूल इकाई को न सौंपकर अपने अधीन किसी अन्य इकाई को सौंपती है उसे सत्ता का विकेन्द्रीयकरण कहते हैं। यह अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण भी नहीं हैं और अकेन्द्रीयकरण भी नहीं। यह तो शुद्ध रूप से सत्ता का विकेन्द्रीयकरण है। भारतीय संविधान लागू होते ही भारत की सारी सत्ता कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका के पास इस प्रकार केन्द्रित हो गई कि जनता पूरी तरह गुलाम हो गई। कार्यपालिका ने अपने कुछ अधिकार ग्राम पंचायतो को दिये किन्तु ग्राम पंचायत का अपना सहयोगी मात्र बनाया, सहभागी नहीं। निर्णय का अन्तिम अधिकार सत्ता के पास सुरक्षित रहा। यह सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ। यदि ये अधिकार नागरिकों को दिये जाते और नागरिक स्वेच्छा से पंचायतो को देने के लिये स्वतंत्र होते, इसमें शासन का कोई हस्तक्षेप नहीं होता तो यह अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण अर्थात् सत्ता का अकेन्द्रीयकरण होता।

अकेन्द्रीयकरण, विकेन्द्रीयकरण अधिकार (Right) और शक्ति (Power) शब्द सामान्य लोगों के लिये कठिन होने हम इनको अलग–अलग प्रयोग करने में सतर्क नहीं रहते हैं न ही कोई शब्दों की कठिनाई पैदा करना चाहते हैं इसलिये इन शब्दों पर जोर नहीं देते हैं।

अधिकारों के विकेन्द्रीयकरण से भ्रष्टाचार न्यूनतम हो जायगा। इससे राजनीति पर समाज का नियंत्रण बढ़ेगा। इससे आम नागरिक मजबूत होगा और उसे राजनैतिक गुलामी से मुक्ति मिलेगी। राजनीति में अपराधीकरण और स्वच्छंदता भी रूक जायगी। इसका लाभ आम लोगों को होगा किन्तु इसका कोई विशेष लाभ हाशिये के लोगों को नहीं होगा। हाशिये शब्द का आपका आशय गरीब, श्रमजीवी ग्रामीण किसान से है। इसका पूरा संबंध अर्थनीति से है। आवश्यक नहीं कि निर्णय की स्वतंत्रता मिल जाने से ही आर्थिक असमानता और श्रम शोषण पर भी कोई अच्छा प्रभाव पड़े। इसलिये हम लोगों ने प्रस्तावित संविधान संशोधनों में आर्थिक संशोधनों का दायित्व केन्द्र के पास इस तरह रखा है कि वह अधिकारों को तो केन्द्रित न करे किन्तु अर्थव्यवस्था पर अप्रत्यक्ष रूप से भरपूर प्रभाव डाले।

प्रश्न–2 श्री अर्पित अनाम, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, लोक स्वराज्य मंच, अम्बाला, हरियाणा।

समीक्षा–ज्ञान तत्व अंक 122 में बालश्रम के विषय में आपके संक्षिप्त विचार पढ़े। उक्त लेख में महिला कानून की तो व्यापक समीक्षा की गई है किन्तु बाल श्रम कानून का संकेत मात्र ही है। मेरे विचार में उक्त लेख में निम्न लिखित अंश और जोड़ना चाहिये।

''बाल श्रम कानून व्यक्ति के मूल अधिकारों का हनन करने वाला है। व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करने वाला है। सरकार से पहले बने कानूनों पर तो ठीक से काम होता नहीं है। वह नित नये कानून पर कानून बनाकर न्यायालयों पर तो अधिक भार डाल ही रही है, साथ में शरीफ लोगों को भी अपराध बोध से ग्रसित करा हीन भावना का शिकार बनाते जा रही है। जो सरकार चोरी–डकैती, बलात्कार, मिलावट, जालसाजी हिंसा–आतंक नहीं रोक पा रही है। वह रोजगार रोकना चाहती है, किसी असहाय गरीब परिवार के लिए कमाने वाले बच्चों का रोजगार छीनना चाह रही है। सरकार रोजगार दे तो सकती नहीं है और रोजगार छीनने के कानून बना रही है। जिस परिवार में कमाने वाला कोई बच्चा ही हो और उसी को रोजगार करने न दिया जायेगा तो यह कानून उन अभागे बच्चों के लिये किसी अभिशाप से कम नहीं होगा। हम व्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती करने वाले किसी भी कानून का कडा विरोध करते हैं। बाल श्रम कानून भी बच्चों से स्वेच्छा से रोजगार में लगने के रास्ते में रोड़ा है, बेबस गरीब परिवारों की रोजी रोटी छीनने वाला है।''

उत्तरः– लेख बहुत लम्बा न हो इसलिये बालश्रम संबंधी विस्तृत विचारों की बलि चढ़ गई। आपने जो लिखा उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। भविष्य में बाल श्रम पर कोई स्वतंत्र लेख लिखूॅगा तो आपके विचार शामिल होंगे ही। आप सब साथी प्रयत्न करिये कि ऐसे मुद्दों पर अपने विचार मीडिया के माध्यम से भी समाज तक भेजिये। आप तो पदाधिकारी भी हैं। आप प्रेस विज्ञप्ति भी जारी करके विचार मंथन प्रारंभ कर सकते हैं।

प्रश्न–3 श्री अजय सहाय, संयोजक सर्वसेवा संघ, दिल्ली प्रदेश।

मैं ज्ञान तत्व पढ़ता रहता हूँ। आपके विचारों में कई मुद्दों पर स्पष्टता दिखाई देती है और कई मुद्दों पर आप चुप रहते हैं। भारत को परमाणु शक्ति विस्तार पर आगे बढ़ना उचित है या अनुचित इस संबंध में आपके विचार कहों भी पढ़ने को नहीं मिले। इस संबंध में आपकी क्या राय है?

उत्तरः– शक्ति विस्तार का सिद्धांत सुरक्षा के निमित्त प्रचारित होता है और सीमा विस्तार के काम आता है। आज तक दुनिया में जो भी शक्ति सम्पन्न देश हुए हैं। सबका यही हाल है। अमेरिका, रूस, चीन, और अनेक इस्लामिक देशों ने शक्ति संग्रह का उपयोग सीमा विस्तार के लिये किया है। यह आवश्यक नहीं कि भारत भविष्य में भी सीमा विस्तार न करने की नीति पर ही कायम रहे क्योंकि ऐसे निर्णय बहुसंख्यक समाज द्वारा न लेकर मुटठ्ी भर नेताओं द्वारा ही लिये जाने की प्रथा है जिससे भारत भी अलग नहीं है।

किसी देश को परमाणु शक्ति संग्रह करना चाहिये या नहीं यह सैद्धान्तिक प्रश्न न होकर परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि सुरक्षा को खतरा हो तो आन्तरिक कष्ट उठाकर भी आवश्यक शक्ति संग्रह करना आवश्यक है किन्तु यदि सुरक्षा को गंभीर खतरा न हो तो आन्तरिक कष्ट दूर करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिये। राजनेताओं की यह चालाकी होती है कि वे समाज के आन्तरिक कष्टों पर से ध्यान हटाने के लिये हमेशा ही बाहरी खतरे का हल्ला खड़ा करते रहते हैं। वर्तमान स्थिति का यदि ठीक से आकलन करें तो विदेशों से अभी कोई गंभीर खतरा नहीं है दूसरी ओर भारत की छब्बीस प्रतिशत आबादी अब भी गरीबी रेखा के नीचे है। ऐसी स्थिति में हमें परमाणु शक्ति प्राप्त करने की दौड़ से बचना चाहिये।

मेरा यह आशय नहीं कि हमें सुरक्षा पर कम ध्यान देना चाहिये। आज यदि चीन और पाकिस्तान चुप हैं तो इसलिये नहीं कि वे दया कर रहे हैं, बल्कि इसलिये कि हम उनसे कमजोर नहीं हैं। मैं इस बात के पक्ष में नहीं कि अन्य देश हमें कमजोर समझ लें किन्तु मैं इस पक्ष में नहीं कि हम इतने मजबूत हो जावें कि अन्य देश भयभीत होकर अपने लोगों के कष्टों को अनदेखा करके भी शक्ति संग्रह को मजबूर हों। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि परमाणु शक्ति संग्रह के विषय में संघ के अधिकतम संग्रह और सर्वोदय के न्यूनतम संग्रह के सिद्धांत को नकार कर समय और परिस्थिति का आकलन करके उचित संग्रह की नीति पर चलें।

प्रश्न–4 श्री अर्पित अनाम, अम्बाला, हरियाणा।

जब हम फील्ड में जाकर संविधान संशोधनों की बात करते हैं तो डॉ. भीमराव अम्बेडकर के भक्त उनके द्वारा बनाये संविधान में संशोधनों के विरूद्ध नाराजगी व्यक्त करने लगते हैं। उनकी शंकाओं को कैसे दूर किया जावे?

उत्तर– किसी भी विचारक के संघर्ष काल में विचारक लोग उनके साथ खड़े हुआ करते हैं और विचारक के सफल होने के बाद संघर्ष के साथियों को किनारे करके भक्त या धूर्त और चापलूस विचारक पर कब्जा कर लेते हैं। ऐसे सफल विचारक की मृत्यु के बाद तो यह काम और भी आसान हो जाता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर भी इससे अलग नहीं। अब उनके साथ या तो भक्त प्रवृति के लोग हैं जो उनके कृतज्ञ हैं या धूर्त जो उनके नाम का उपयोग स्वार्थ में करते हैं।

मैने डॉ. भीमराव अम्बेडकर की योग्यता, कार्य प्रणाली और कार्य के विषय में गहन अध्ययन नहीं किया है। अपनी सीमित शक्ति को इतिहास के गहन अध्ययन में लगाने की अपेक्षा इतिहास के काम चलाउ ज्ञान तक सीमित रखकर भविष्य की योजनाओं के चिन्तन मनन पर लगाना मैंने अधिक आवश्यक और उचित समझा। इसलिये अम्बेडकर जी के व्यक्तित्व पर कोई अधिकृत टिप्पणी मैं नहीं कर सकता। यह बात पूरी तरह सिद्ध हो चुकी है कि भारत की वर्तमान समस्याओं का मुख्य कारण भारतीय संविधान की असफलता है जो न तो राजनैतिक उच्श्रंखलता का रोक सका न ही समाज के अधिकाधिक अधिकार मुट्ठीभर राजनेताओं के पास केन्द्रित होने को। सारी दुनियॉ में चरित्र पतन, श्रमशोषण भ्रष्टाचार और अपराध बढ़ रहे हैं। भारत में इनकी वृद्धि की रफ्तार सबसे तेज है। भारत के राजनेता भारतीय संविधान का विश्व का सबसे अच्छा संविधान कहते है और यह बात सच भी है क्योंकि अन्य किसी देश में संवैधानिक तरीके से अल्पसंख्यकों द्वारा बहुसंख्यकां के अधिकार अपने पास केन्द्रित करने का इतना अच्छा अवसर नहीं मिला। इसलिये संविधान में भयानक कमजोरियॉ प्रमाणित हो चुकी हैं। किन्तु इसका दोष किस पर है इस पर दो प्रकार की राय है। एक मत यह है कि यह सविधान अंबेडकर ने बनाया है और वही इसके लिये पूरी तरह दाषी हैं। दूसरा मत यह है कि अम्बेडकर इस संविधान के मूल स्वरूप के विरूद्ध थे। किन्तु उन्हे तो सिर्फ लिखने तक का दायित्व दिया गया था इसलिये वे मजबूर थे।

मैं नहीं कह सकता कि संविधान निर्माण में अम्बेडकर जी की कितनी भूमिका थी किन्तु सामान्य रूप से तो भारतीय संविधान एक कसौटी बन चूका है। अम्बेडकर सरीखा विद्वान ऐसा संविधान बना ही नही सकता जो संसद को मैनेजर के स्थान पर कस्टोडियन के अधिकार सौंपकर समाज को राजनेताओ का गुलाम बना दे। किन्तु यदि संविधान निमार्ण में अम्बेडकर की निर्णायक भूमिका मानी जाती है ता अम्बेडकर की विद्वता की हमारी सारी अवधारणा ही चकनाचूर हो जाती है क्योंकि ऐसा अपरिपक्व संविधान रचने वाले को परपक्व और विद्वान मानना हमारी भूल होगी।

आपसे अम्बेडकर समर्थको से चर्चा होती रहती है। जो लोग मानते है कि संविधान निर्माता अम्बेडकर थे, उन्हे आप तर्क दें कि अम्बेडकर जैसा विद्वान ऐसी भूल कर ही नही सकता। वह माने या न माने किन्तु आप सच्चाई से काई समझौता न करें यदि कोई व्यक्ति बहुत अधिक जोर दें तो आप कह सकते है कि यदि आपका यह कथन सही है कि संविधान अम्बेडकर ने बनाया तो इससे अम्बेडकर की विद्वता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है कि वे वास्तव में विद्वान थे या प्रचार के आधार पर उन्हे विद्वान सिद्ध किया जा सका हैं।

मेरी अम्बेडकर भक्तों को भी सलाह है कि वे अम्बेडकर जी के व्यक्तित्व को भारतीय संविधान के साथ जोडने की भूल न करें क्योंकि अम्बेडकर जी का व्यक्तित्व संविधान को तो निर्दोष सिद्ध नहीं कर सकता किन्तू दोषी संविधान अम्बेडकर जी के व्यक्तित्व को संदेह में डाल सकता है।

आप एक तर्क और दे सकते हैं कि अब तक राजनेताओं ने मिलकर संविधान में करीब सौ संशोधन किये तब अंबेडकर जी क्यों याद नहीं आये? अब समाज तीन संशोधन चाहता है तो अंबेडकर का नाम क्यों आ रहा है? इससे सिद्ध होता है कि आपत्ति कर्ता भी समाज को मजबूत नहीं देखना चाहता है।

प्रश्न—5 श्री शरद साधक जी, अध्यक्ष आचार्य कुल, वाराणसी, उ0प्र0।

ज्ञान तत्व एक सौ इक्कीस में अपनों से अपनी बात के अन्तर्गत आप द्वारा वानप्रस्थ की दीक्षा लेने और नामकरण बजरंग मुनि करने की सूचना मिली। ज्ञान तत्व जब चित्त चिन्तन और चरित्र में रूपांतरित होता है तब मुनित्व उपलब्ध होता है। उपलब्धि स्वयं बुद्ध को हो सकती है और बुद्धबोधित को भी। आपका लेखन, अनुसंधान, प्रतिपादन स्वयं बुद्ध की भाव भूमि से अनुप्राणित रहा तभी तो आपने सर्वोदय और आर्य समाज की अवधारणाओं की समीक्षा करने से परहेज नहीं किया। लेकिन उसी से ऐसा भी लगता है कि आप द्वंद्व से उबर नहीं पाये हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक के साथ सांस्कृतिक यथा स्थिति को तोड़ने की जो बहस आपने छेड़ी उससे व्यक्ति के साथ व्यवस्था बदलने वाला चित चिन्तन और चरित्र को वैज्ञानिक अधिष्ठान मिलना चाहिये। संविधान संशोधन के लिये जैसे चार सूत्री योजना बनी वैसे सामुदायिक आचार संहिता बदलने की भी कार्य योजना बनाये बिना अर्थ, राज्य , धर्म, साधना को नया रूप नहीं मिलेगा। बजरंग मुनि को नये नाम के साथ नयी संरचना पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तब द्वंद्वातीत स्थिति आयेगी। दूसरों के अनुभवों से सीखिये लेकिन अपने अनुभवों को प्रमाण रूप पेश कीजिये। ग्रन्थ, पंथ, बुद्धबोधितों के लिये सहायक हो सकती है लेकिन स्वयं बुद्धों को तो अपने ही अनुसंधान से प्राप्त सत्य की स्थापना का मिशन बनाना होता है। भगवान आपको वह मिशन बनाने और हर क्षेत्र की यथा स्थिति तोड़ने का संबल दें, यही प्रार्थना है।

मुनि मननशील होते हैं। जब वे अमन की स्थिति में हाते है तब न कहीं ज्ञाता रहता है न ज्ञेय। मात्र ज्ञान ही ज्ञान बचता है जिसके अधिष्ठान पर आचार्य नई समाज रचना करते हैं। समाज, निष्ठ, श्रम निष्ठ लोग जब रचना निष्ठ बनें तब आचार्य शक्ति प्रभावकारी होती हैं। इसलिये आपकी असरकारी भूमिका में हम आपके साथ हैं। आचार्य कुल आपके मिशन की सफलता का आकांक्षी हैं।

उत्तर— आपके छोटे से सारगर्भित पत्र में मेरे लिये आर्शीवाद था, दायित्वबोध भी था। इस पत्र में प्रेरणा भी दिखी और मार्ग दर्शन भी। आपने इस पत्र के माध्यम से सफलता की कामना भी की और सहयोग का वचन भी दिया। इस पत्र में मेरे लक्ष्य की दिशा भी बताई गई है। मुझे इस पत्र का उत्तर देने के पूर्व इतनी बार पढ़ना और सोचना पड़ा जितना शायद ही किसी पत्र के लिये हुआ हो।

सबसे पहले आपकी अपेक्षाओं की चर्चा करें। आपने सलाह दी कि संविधान संशोधन की कार्य योजना के साथ—साथ सामुदायिक आचार संहिता बदलनें की भी कार्य योजना बननी चाहिये। इस विषय पर मैने वर्षो चिन्तन मनन किया है। तब मैने अपनी पुस्तक ज्ञान तत्व मंथन के अपराध शीर्षक के क्रमांक उन्नीस में लिखा। ''यदि कोई शासन सामाजिक अपराध नियन्त्रण में अक्षम है तो समाज को उसे या तो (1) उचित मार्गदर्शन देना चाहिये। या (2) उसे बदलकर नया शासन बना देना चाहिये। या (3) आपातकाल घोषित करके सारी शक्ति स्वयं में तब तक केन्द्रित कर लेनी चाहिये जब तक कोई व्यवस्था की परिस्थितियां पैदा नहो जावे। वर्तमान परिस्थितियां आपात्काल के अनुरूप हैं।

ऐसे आपातकाल में ऋषि मुनियों की भूमिकाऍ बहुत महत्वपूर्ण हो जाया करती हैं। जहाँ सामान्यकाल में ऋषि मुनि सामुदायिक आचार संहिता पर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित करते रहे हैं वहीं मध्यकाल में वे राज्य और समाज दोनों की चिन्ता करते रहे हैं। किन्तु जब राज्य और आसुरी प्रवृत्तियों का ऐसा तालमेल हो जावे कि सामुदायिक आचार संहिता असुरक्षित हो जावे तब ऋषि मुनियों का दायित्व होता है कि वे सामुदायिक आचार संहिता के विकास की योजना को अल्पकाल के लिये स्थगित करके उसकी सुरक्षा के लिये संघर्ष का मार्ग प्रशस्त करे। रामायण काल में एसी ही स्थिति में ऋषि मुनियों ने अपने आश्रमों में हथियार बनाये। इन ऋषि मुनियों ने संघर्ष के लिये राम को खोजा, उन्हें हथियार दिये और हथियार चलाने के लिये ट्रेनिंग भी दी। मेरे आकलन अनुसार आज वैसी ही आपात् स्थिति है जब हम ऋषि मुनियों को सामदायिक आचार संहिता की सुरक्षा के दावित्व का स्वीकार करके एक ऐसा नेतृत्व तैयार करना चाहिये जो इस आपातकाल को सामान्यकाल में बदल सके। इस संबंध में मैं माननीय ठाकुरदास जी बंग तथा आप (शरद कुमार साधक) की ओर आशा लगाये हूँ कि आप दोनों ऋषि मुनि कुछ मार्ग निकालेंगे। मैं आप दोनों के साथ हूँ। निर्माण के नाम पर संघर्ष से पलायन को समाज कभी क्षमा नहीं करेगा।

इस समय रामायण काल नहीं कि हमें हथियार बनाने और चलाने की ट्रेनिंग देनी पड़े। अब तो संविधान का शासन है और संविधान संशोधन ही नियंत्रण का आधार है। इसलिये हम लोगों ने चार सूत्रीय संविधान संशोधन को अपनी व्यवस्था परिवर्तन की त्रिसुत्रीय कार्य योजना का पहला सूत्र बनाया हैं। सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तन के तीन चरण हैं (1) संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तन, (2) राजनैतिक व्यवस्था परिवर्तन, (3) सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन। पहले चरण में राजनीति पर संवैधानिक अंकुश की बात है। यही चार सूत्रीय आंदोलन है जिसमें दो सूत्रों पर ही ज्यादा जोर है। राजनीति पर अंकुश के लक्षण दिखते ही अपराध नियंत्रण आर्थिक असमानता, श्रम मूल्य आदि कुछ राजनैतिक व्यवस्थाओं में बदलाव की बात होगी। और उसके बाद आपात्काल समाप्त घोषित करके सामाजिक परिवर्तन की कोशिश शुरू हो जायगी जो तब तक चलती रहेगी जब तक समाज पर कोई गंभीर संकट न आ जाए।

आचार्य कुल ने हमेशा ही संस्था के रूप में भी हमारे प्रयत्नों का समर्थन किया है। आपने वाराणसी की भरी सभा में घोषणा की ही थीं किन्तु आचार्य कुल के देहरादून सम्मेलन में आचार्य कुल के पदाधिकारियों ने जिस तरह सहायता का वजन दिया उससे समर्थन की गंभीरता का पता चलता है। आपने अपने पत्र में मुझे जो सीख दी है वह मेरे बहुत काम आयेगी। साथ ही मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि मैं किसी भी स्थिति में मुनि परंपरा को आंच नहीं आने दूँगा और आपके तथा बंग जी के मार्ग दर्शन में अपने दायित्व पूरे करने का प्रयास करूँगा।

उत्तरार्ध

प्रश्न– व्यवस्था परिवर्तन अभियान की आरक्षरण के संबंध में नीति क्या है? बजरंगमुनि जी तो आरक्षण के बिल्कुल विरूद्ध है। व्यवस्था परिवर्तन अभियान जातीय आरक्षण के ही विरूद्ध है या महिला आरक्षण के भी विरूद्ध है?

उत्तर– व्यवस्था परिवर्तन अभियान, लोक स्वराज्य मंच और श्रम शोषण मुक्ति अभियान तीन ऐसे संगठन हैं जो बिल्कुल भिन्न स्वरूप के है किन्तु एक ही कार्यालय से संचालित हैं। बजरंगमुनि जी तीनों संगठनों को सहायता करते हैं और मांगने पर सलाह भी देते हैं किन्तु वे संगठन में शामिल नहीं है।

आरक्षण के समर्थन या विरोध से इन तीनों संगठनों का कोई संबंध नहीं हैं क्योंकि यह इन तीनों का विषय ही नहीं है।

व्यवस्था परिवर्तन अभियान राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर नियंत्रण के प्रयास तक सीमित है। अन्य किसी भी मुद्दे पर यह संगठन न विचार मंथन करता है न ही समर्थन या विरोध। लोक स्वराज्य मंच शासन का समाज में हस्तक्षेप कम से कम करने के प्रयत्न तक सीमित है। वह भी आरक्षण का कोई मत नहीं रखता। श्रम शोषण मुक्ति अभियान बुद्धि और धन के श्रम के विरूद्ध असंतुलन को संतुलित करने तक सीमित है। वह भी आरक्षरण का कोई मत नहीं रखता। श्रम शोषण मुक्ति अभियान बुद्धि और धन के श्रम के विरूद्ध असंतुलन को संतुलित करने तक सीमित है। यह भी जातीय आरक्षण या महिला आरक्षण के पक्ष विपक्ष से दूर है। बजरंगमुनि जी यदि आरक्षण के संबंध में कोई विचार रखते हैं तो उसका उत्तर वे ज्ञान तत्व के पूर्वाध में दे सकते हैं। आप उनसे पूछ सकते हैं। हमारे कार्यालय का इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है।

वैसे बजरंगमुनि जी निरंतर विचार मंथन करते रहते हैं। उन्होंने अपने जीवन में अब तक तीन निष्कर्ष निकाल लिये हैं–

(1) भारत में अल्पसंख्यक राजनेताओं ने बहुसंख्यक समाज को गुलाम बनाकर रखा है। इस गुलामी से मुक्ति के गंभीर प्रयत्न आवश्यक हैं।

(2) लोकतंत्र की विकृत परिभाषा लोक नियुक्त तंत्र है। इसे लोक नियंत्रित तंत्र होना चाहिये। ऐसा परिवर्तन सिर्फ भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में होना चाहिये।

(3) बुद्धि और धन ने श्रम शोषण के उद्देश्य से सदा ही सस्ती कृत्रिम उर्जा का नारा दिया है। भारत की अर्थव्यवस्था में ऐसा आमूल परिवर्तन हो कि श्रम मूल्य बढ़े, गरीबी रेखा के नीचे वालों को जीवन भत्ता मिले और आवश्यक वस्तुओं को पूरी तरह कर मुक्त कर दें।

इन तीन के अतिरिक्त अनेक विषयों पर मुनि जी निरंतर विचार मंथन करते रहते हैं जो ज्ञान तत्व पूर्वाध में प्रकाशित होता है। आवश्यक नहीं कि यह उनका अंतिम विचार हो। आरक्षण के पक्ष विपक्ष में विचार रखने का क्रम भी

विचार मंथन प्रक्रिया का अंग है अन्तिम नहीं। आरक्षण के विषय में वे जो विचार रखते है वे उनके व्यक्तिगत हैं ज्ञान यज्ञ मण्डल के नहीं और व्यवस्था परिवर्तन अभियान का अन्य मुद्दों पर पक्ष विपक्ष विषय ही नहीं है।

अपनों से अपनी बात

मैने पचास वर्ष पूर्व एक सपना देखा था कि मैं समाज में आपराधिक और धूर्धता पर शराफत को निर्णायक मजबूती प्रदान करूँगा। मैंन लगातार अपने जीवन के सर्वोत्तम पचास वर्ष इस एक कार्य में ही लगा दिये। शराफत और कमजोर होने के कारण और समाधान खाजने का काम पूरा हो चुका है। अब यह अभियान अन्तिम चरण में है। अब यह कार्य आप सबका बन चुका है। अब तक मैंने इस कार्य का नेतृत्व किया। अब वानप्रस्थ के बाद इस कार्य को पूरा करने का नेतृत्व आप सबको सामूहिक रूप से करना है। अब मुझे आर्थिक रूप से भी अपने परिवार पर निर्भरता खत्म करनी होगी क्योंकि अब मैं पारिवारिक सम्पत्ति का किसी भी रूप में स्वामी नहीं रहा। इस तरह अब सब कुछ आप पर निर्भर है। आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप यदि सक्षम हैं तो इस योजना के संरक्षक बनकर इस कार्य में सहायक बने अथवा किसी भी रूप में कार्यालय पर आर्थिक बोझ न डालें। आप ज्ञान तत्व का आजीवन या वार्षिक शुल्क भेंज दें। यदि आप मुझे मार्च अप्रैल की यात्रा में आमंत्रित करते है तो मार्ग व्यय स्वरूप पांच सौ रूपया की चिन्ता करें। अब यह कार्यालय आप सबका है। कार्यालय में आने वाले अतिथियों की भोजन व्यवस्था को आप सबके आधार पर ही चलती है। आपको ही अपने कार्यालय की चिन्ता करनी है।

मैं जो कुछ कर सकता था, मैने पूरा किया है। अब सब कुछ आप सबको ही करना है। अगले कुछ वर्ष निर्णायक परिणाम देने वाले हो सकते हैं। आप पूरा पूरा प्रयत्न करें कि अगले दो तीन वर्षो म ही कुछ परिवर्तन स्पष्ट हो जावें। घटनाएॅ आपकी सक्रियता और सहयोग की प्रतीक्षा कर रही हैं।

व्यवस्था परिवर्तन अभियान क्या, क्यों और कैसे?

महावीर सिंह

कार्यकारिणी समिति,, ज्ञान यज्ञ मंडल

यद्यपि समय एवं परिस्थिति के अनुसार समाज में सदैव परिवर्तन होते रहता है, कभी अनुकूल दिशा में तो कभी प्रतिकुल दिशा में, जिसके बहुत से कारण है, परन्तु राजनैतिक व्यवस्था इसमें मुख्य भूमिका निभाती है। भारत में कभी

रामराज्य की व्यवस्था थी, तो कभी भारत ''सोने की चिड़िया'' एवं ''विश्व गुरू'' कहलाता था। भारत मं ही रावण, हिरण्यकश्यप, कंस, एवं दुर्योधन जैसे आंतकी शासक रहे, जिनके राज्य में प्रजा अत्यन्त दुःखी व पेरशान थी तथा राम, कृष्ण जैसे अवतारी पुरूषों के नेतृत्व में उस समय ब्यवस्था परिवर्तन का कार्य किया गया जिसके फलस्वरूप समाज को सुख की अनुभूति हुई।

इस प्रकार दुर्भाग्य से इधर काफी समय से परस्पर फूट एवं राजनैतिक दुर्बलताओं के कारण देश दासता के चंगुल में जकड़ा हुआ था। ब्रिटिश शासन समाप्त करने हेतु स्वतंत्रता संग्राम चलाया गया, जिसके फलस्वरूप 1947 में देश स्वतंत्र हुआ तथा देश की सत्ता कांग्रेस ने प्राप्त की, परन्तु उस समय स्वतंत्रता आंदोलन के नेता महात्मा गांधी केवल सत्ता परिवर्तन न चाहते हुए व्यवस्था परिवर्तन चाहते थे तथा उनका राम राज्य का स्वप्न था, परन्तु अचानक उनके परिदृश्य से चले जाने के पश्चात् वह सपना साकार नहीं हो सका। कांग्रेस के उनके राजनैतिक अनुयायियों ने सत्ताकांक्षा के कारण उनके विचारों को स्वीकार नहीं किया, जिसके दुष्परिणाम आज दृष्टि गोचर हो रहे हैं।

गांधी जी के रचनात्मक अनुयायियों ने समाज एवं व्यवस्था परिवर्तन का कार्य तथा आचार्य विनोबा भावे के नतृत्व में भूदान, ग्रामदान आंदोलन द्रुत गति से आगे बढ़ा तथा महत्वपूर्ण उपलब्धियॉ प्राप्त हुई, परन्तु निरतंर अनुशासन के अभाव के आंदोलन द्वारा व्यवस्था परिवर्तन का कार्य सफल नहीं हो सका। इसका दूसरा कारण राजनैतिक सत्ता द्वारा समुचित सहयोग प्रदान न करना रहा।

इसके पश्चात् 1974–75 में श्री जयप्रकाश नारायन द्वारा गुजरात एवं बिहार में छात्रो एवं युवाओं के आंदोलन का नेतृत्व करते हुये व्यवस्था परिवर्तन हेतु सम्पूर्ण क्रान्ति का नारा दिया गया, जिसमें सभी विपक्षी पार्टियों का सहयोग प्राप्त हुआ जिन्हें आपातकाल के पश्चात आम चुनाव में जनता पार्टी के रूप में अभूतपूर्व सफलता मिली तथा जनता पार्टी सत्तासीन हुई। जो दुर्भाग्य सत्ता परिवर्तन तक सीमित रही तथा जय प्रकाश नारायण का सम्पूर्ण क्रान्ति का सपना रखा रह गया। इस प्रकार पुनः व्यवस्था परिवर्तन का अवसर हाथ से निकल गया।

प्रायः ऐसा होता है कि महान व्यक्तियों द्वारा किये गये प्रयासों को कुछ महत्वकांक्षी लोग सफल नहीं होने देते। अतः इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये महात्मा गॉधी, विनोबा भावे तथा जय प्रकाश नारायण द्वारा किये गये आन्दोलनों एवं प्रयत्नों को कुछ व्यक्तियों ने निकट से देखा है तथा उनका सूक्ष्म निरीक्षण एवं परीक्षण किया है, जिनमें बजरंग मुनि भी एक ऐसे व्यक्ति है, जिन्होंने छत्तीसगढ़ के रामानुंजगंज को नगरपालिका के अध्यक्ष पद से व्यवस्था परिवर्तन का एक लघु प्रयोग किया तथा अध्यक्ष पद के समस्त अधिकार वहॉ की जनता को सौंप दिया, जिसके फलस्वरूप कस्बे की सभी समस्याओं का पूर्णरूपेण समाधान प्रकट हुआ।

तत्पश्चात् उन्होंने लम्बे अर्से के शोध कार्य जिसमें देश के गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया था, द्वारा यह पाया कि अब उन्हें देशव्यापी यह प्रयोग करने हेतु भारत की राजधानी देहली में बैठकर इस कार्य को आगे बढ़ाना चाहिये। अतः उन्होंने देहली में कार्यालय खोलकर कार्य करना प्रारंभ किया तथा 2,3,4 सितम्बर 2005 को राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया

गया, जिसमें देश के विभिन्न प्रान्तों के व्यक्तियों ने आकर भाग लिया जिसमें व्यवस्था परिवर्तन अभियान का समर्थन करते हुये निम्न चार सूत्री प्रस्ताव पारित किया गया।

(1) जन प्रतिनिधियों को वापिस बुलाने का अधिकार।

(2) सत्ता का विकेन्द्रीयकरण हेतु परिवार, गॉव, जिला, प्रदेश व केन्द्र स्तर पर अधिकारों की सूचियों की स्थापना।

(3) नीति– निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति न्यायालय में जनादेश हो।

(4) विदेशी समझौतों का संसद द्वारा अनुमोदन अनिवार्य।

संविधान में उपरोक्त संशोधन हेतु 23 जुलाई 2006 से जनजागरण हेतु श्री बजरंगलाल तथा आचार्य पंकज द्वारा भारत यात्रा प्रारंभ करके 2 अक्टूबर 2006 से यात्रा का प्रथम चरण पूरा किया गया। दूसरे चरण में आचार्य पंकज, जिनको व्यवस्था परिवर्तन अभियान का अध्यक्ष चुना गया, द्वारा भारत यात्रा पूनः प्रारम्भ की जा चुकी है तथा श्री बजरंगलाल जी माह अप्रैल 2007 से अपनी भारत यात्रा प्रारम्भ करेंगे।

जैसा कि सर्वोदय समाज, आजादी बचाओं आन्दोलन, भारत जन आंदोलन, नर्मदा बांध आन्दोलन, टिहरी बांध आंदोलन, एवं भारत युवजन समाज का उद्देश्य व्यवस्था परिवर्तन का है, अतः इन सब संस्थाओं को संयुक्त प्रयास करके व्यवस्था परिवर्तन अभियान को सफल बनाना चाहिये। जन प्रतिनिधियों द्वारा संविधान संशोधन किये बिना व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में कदम बढ़ाना सम्भव नहीं। अतः मेरे विचार से मतदाता परिषदों का गठन करके लाक प्रतिनिधियों को संसद में भेजने की व्यवस्था करनी होगी।